ISSN: 3107-3557 (Online)

हिंदी भाषा-साहित्य : आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का योगदान

Prof. Prabha Pant
Professor in Hindi
M.B.G.P.G. College, Haldwani Nainital

बहुमुखी प्रतिभा के धनी आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी, एक युग-प्रवर्तक साहित्यकार, आलोचक, भाषाविद्, अनुवादक तथा सम्पादक होने के साथ ही इतिहास, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र तथा विज्ञान के भी मर्मज्ञ थे। उन्होंने हिंदी भाषा को परिमार्जित तथा हिंदी साहित्य को परिष्कृत करके, उसे नए आयाम प्रदान किए। हिंदी में प्रथम आलोचनात्मक पुस्तक लिखकर हिंदी साहित्यकारों को आलोचनात्मक दृष्टि प्रदान की; इसके अतिरिक्त भारत यायावर द्वारा संपादित पुस्तक 'हिन्दी भाषा' जो सन् 2003 में वाणी प्रकाशन से प्रकाशित हुई, उसमें 'हिन्दी भाषा की उत्पत्ति' के विषय में जो गहन जानकारी प्राप्त होती है, वह इतनी महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी है कि आज भी उसकी प्रासंगिता उतनी ही है, जितनी तब थी। महावीर प्रसाद द्विवेदी द्वारा लिखी गई यह पुस्तक, वह पुस्तक है जिसमें पहली बार हिन्दी के साथ ही अन्य भारतीय भाषाओं के आदिम स्रोतों की पड़ताल भी की गई है। यद्यपि बाद में सुनीति कुमार चटर्जी आदि अनेक भाषाविदों ने भारतीय भाषाओं के उद्भव और विकास पर विस्तृत जानकारी प्रदान की है; किन्तु महावीर प्रसाद के योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। द्विवेदी जी हिंदी को देशव्यापी भाषा मानते थे, अतः उसे राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित होते हुए देखने के लिए आजीवन प्रयत्न करते रहे।

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने हिंदी भाषा के विकास में, अनेक लेखकों में नवचेतना-जाग्रत करने तथा उन्हें साहित्यकार के रूप में प्रतिष्ठत करने में जो भूमिका निभाई, वह अविस्मरणीय है; इसलिए उन्हें आधुनिक हिंदी साहित्य का निर्माता भी कहा जाता है। आचार्य द्विवेदी में हिन्दी समाज के एक सम्पूर्ण युग की गतिशील चेतना सन्निहित है। हिन्दी साहित्य के प्रति आचार्य द्विवेदी के अविस्मरणीय योगदान को सभी आलोचकों ने एक मत से स्वीकारा है। "द्विवेदी जी का व्यक्तित्व मूलतः सुधारक और प्रवर्तक का व्यक्तित्व है। उन्होंने समस्त प्राचीन को ताख पर रख कर नवीन अभ्यास और नये अनुभवों का रास्ता पकड़ा । हिन्दी की किसी प्राचीन परम्परा के व कायल न थे।"[1]

महावीर प्रसाद द्विवेदी का जन्म पन्द्रह मई अट्ठारह सौ चौसठ (15.05.1864) में, उत्तर प्रदेश के रायबरेली ज़िले में स्थित दौलतपुर गाँव में हुआ। उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा हिंदी में नहीं बल्कि फ़ारसी व उर्दू में गाँव की पाठशाला में ही प्राप्त की। उनके पिता श्री रामसहाय द्विवेदी ब्रिटिश इंडियन आर्मी में थे; उन्होंने अपने बेटे को अंग्रेज़ी भाषा की शिक्षा के दिलाने के उद्देश्य से रायबरेली के ज़िला विद्यालय में प्रवेश दिलाया; उस समय बालक महावीर की उम्र तेरह वर्ष थी। "बालक महावीर बालक महावीर को प्रति सप्ताह 48 किमी पैदल चलकर घर आना पड़ता और सप्ताह भर का आटा चावल आदि लादकर रायबरेली जाना पड़ता।"[2] किन्तु, जीवन में सफलता उसके ही क़दम चूमती है, जो परिश्रम और विपरीत परिस्थितियों में भी विचलित नहीं होता। "मीलों पीठ पर आटा रखकर ले जाने वाला बालक भाग्यचक्र के थपेड़ों का सामना करता युवा, शिक्षा और साधनों से हीन होता हुआ भी विद्याध्ययन के कठोर क्षेत्र में प्रवेश करता ही जाता है। बर्फानी नदी की विकट चट्टानें फाड़कर मैदान तक

आने में कितना परिश्रम पड़ता है। मानवीय जीवन सरिता का पहाड़ी पड़ाव; (Mountain stage) क्लिष्ट पथ जवानी का पूर्वकाल ही होता है।"[3]

कालान्तर में जब वे अध्ययन हेतु अपने पिता के साथ मुम्बई गए, वहाँ उन्होंने अंग्रेजी के साथ-साथ संस्कृत, गुजराती तथा मराठी की शिक्षा भी प्राप्त की। उनकी अध्ययनशीलता, विद्वता तथा विविध भाषाओं की गहन जानकारी का अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि वे हिंदी, संस्कृत, अंग्रेज़ी, उर्दू, फ़ारसी, बंगला, मराठी, गुजराती भाषाओं की पत्र-पत्रिकाओं एवं पुस्तकों का नियमित पाठ किया करते थे। आचार्य महावीर प्रयास द्विवेदी बाल्यकाल से ही से अत्यन्त कर्मठ, कर्तव्यपरायण, समयनिष्ठ, दृढ़ निश्चयी तथा अनुशासनप्रिय थे। अपने इन्हीं गुणों एवं विशेषताओं के कारण वे रेलवे में 'तार बाबू' के पद से 'चीफ़ क्लर्क' के पद तक की यात्रा करते हुए, साहित्यसृजन एवं लेखन कार्य भी सफलतापूर्वक कर सके। "द्विवेदी जी ने अपने समय की पांबदी की है दृढ़व्रती की भांति, काम करने का उनका ढ़ंग यह था और अब भी है, कि जो प्रोग्राम बना दिया लिया, उसे निभाना जरूर किसी समय उनका प्रण था कि एक घंटा प्रतिदिन लिखेंगे। 10 बजे से 6 बजे तक ऑफिस का काम रेलवे का करते थे। एक बार घर आना हुआ। एक घंटा लिखने का समय कैसे मिलता; बिंद की रोड स्टेशन पर बैठकर एक घंटे पहले लिखा, तब घर गये।"[4] वे जिस कार्य को करने का संकल्प करते थे, उसे अवश्य ही पूर्ण करते थे। "संस्कृत से उनका प्रेम अवश्य था, पर वह भी उतना जितना नवीन हिन्दी को स्वरूप देने के लिए आवश्यक था। इसलिए द्विवेदी जी की शैली में संपूर्ण नवीनता के दर्शन होते हैं, उतनी नवीनता जितनी उनके पीछे आने वाले रामचन्द्र शुल्क जैसे प्रशस्त लेखकों में भी नहीं दिखाई देती; नवीन निर्माण का नेतृत्व करने वाले द्विवेदी जी के लिए यह उपयुक्त ही था। नव निर्माण का कार्य हाथ में लेकर उन्होंने भाषा और व्याकरण की नींव मजबूत की, इस कार्य को उन्होंने स्वतः किया और अपनी 'स्कीम' के अनुसार उन्होंने दूसरों के हाथ दूसरे काम दिए।"[5]

कोई भी युगप्रवर्तक, सुधारक अथवा आलोचक सबको प्रसन्न करके अपने कर्तव्यों का निवर्हन नहीं कर सकता; आचार्य द्विवेदी के लिये भी ऐसा कर पाना संभव नहीं रहा। हिंदी भाषा-साहित्य के उत्थान के लिये उन्हें भी अपने अनेक साहित्यकार मित्रों के रोष का सामाना करना पड़ा; किन्तु वे 'सरस्वती' पत्रिका में उन्हीं रचनाओं को स्थान देते रहे, जो उन्हें स्तरीय तथा हिंदी साहित्य के उत्थान के लिये महत्त्वपूर्ण लगती थीं। किसी भी प्रकार का बाह्य दबाव उन्हें अपने लक्ष्य से कभी विमुख या विचलित नहीं कर पाया। "बहुत से हिन्दी साहित्य सेवियों की धारणा है कि द्विवेदी जी का स्वभाव इस्पात की तरह कड़ा है। सदा आलोचना और कड़ी आलोचना करते रहने से उनकी कोमल भावनाएँ कुंठित-सी हो गयी है। उनकी तीव्र बुद्धि शीघ्र ही कमजोरियों को पकड़ लेती है और उनका ऐसा पलस्तर बनातीं है कि लोगों की खूबियां उनकी कलम से दिखाई ही नहीं पड़ती।"[6]

यदि हम कोई कोई कार्य किसी लक्ष्य अथवा उद्देश्य विशेष को दृष्टि में रखकर करते हैं तथा किसी पूर्वाग्रह या दुराग्रह के वशीभूत होकर कोई निर्णय नहीं लेते, तो निःसंदेह उसका परिणाम सकारात्मक ही निकलता है और इससे हमारे प्रशसंकों तथा पक्षधरों की संख्या में भी वृद्धि होती जाती है; आचार्य महावीर के साथ भी ऐसा ही हुआ। यद्यपि तत्कालीन तथाकथित साहित्यकार इर्श्यावश उनके विषय में अनर्गल प्रलाप करते थे, किन्तु उनके द्वारा खड़ीबोली को सुसंस्कृत रूप प्रदान करने के लिए किये गए प्रयास तथा हिंदी साहित्य के भंडार को समृद्ध करने के लिए सक्षम

लेखकों को खोजकर, उनसे साहित्य-सर्जना करवाना भी लोगों की दृष्टि से ओझल न रह सका। "ये सब ख्याल दूषित दिमाग की उपज है और पागलों का प्रलाप है। जो सबको स्वार्थ और ढोंग की दृष्टि से देखते है, उनका आचार्य के प्रति ऐसा ख्याल होना स्वाभाविक है। वास्तविक बात यह है कि हिन्दी साहित्य में द्विवेदी जी धवलगिरी की धवल चोटी के समान स्वच्छ पवित्र और महान है। इतने महान होते हुए भी उनका दिमाग बादलों में नहीं है, वरन् साधारण जनता में है।"[7] अनेक भाषाओं के ज्ञाता होने के कारण उन भाषाओं के साहित्य को पढ़ने में भी उनकी अभिरुचि रही। वे हिंदी के रचनाकारों को लिखने के साथ-साथ अन्य भाषाओं का श्रेष्ठ साहित्य पढ़ने के लिये भी प्रेरित किया करते थे। एक बार किसी कवि ने अपने प्रियजन के निधन पर उनकी पत्रिका में प्रकाशन के लिये एक 'शोक-कविता' लिखकर भेजी; जिसे उन्होंने नहीं छापा। उनके घनिष्ठ मित्र श्रीराम शर्मा ने पूछा, "क्या बहुत रद्दी थी?" "वाहियात मर्सिया था। बाप मरे, मर्सिया नहीं लिखा, स्त्री मरी मर्सिया नहीं लिखा। दुनिया में मरते तो हैं ही फिर कुछ कविता भी होती है। हाँ, 'दबीर' और 'अनीस' के से मर्सिये होते तो क्या बात थी। हिन्दीवाले जाने इनको पढ़ते है या नहीं तुमने पढ़ा है ?"[8]

यद्यपि वे सदैव नवीनता के ग्राही रहे, इसका तात्पर्य यह नहीं कि वे प्राचीन परम्पराओं एवं संस्कृति के विरोधी थे; वे इनसे प्रेम तो करते थे; किन्तु उनसे चिपके रहने के आग्रही नहीं थे, उनकी प्रवृत्ति नवयुग की आवश्यकताओं के अनुरूप नवीन के स्वीकार की थी। नवयुग बोध की यही सीख उन्होंने अन्य साहित्यकारों को भी दी तथा भाषा-व्याकरण की नींव को सुदृढ किया। "व्याकरण की शुद्धता और भाषा की सफाई के प्रवर्तक द्विवेदी जी ही थे। 'सरस्वती' के संपादक के रूप में, उन्होंने आई हुई पुस्तकों के भीतर व्याकरण और भाषा की अशुद्धियाँ दिखाकर, लेखकों को बहुत कुछ सावधान कर दिया। यद्यपि कुछ हठी और अनाड़ी लेखक अपनी भूलों और गलतियों का समर्थन तरह-तरह की बातें बनाकर करते रहे, पर अधिकतर लेखकों ने लाभ उठाया और लिखते समय व्याकरण आदि का पूरा ध्यान रखने लगे। गद्य की भाषा पर द्विवेदी जी के इस शुभ प्रभाव का स्मरण, जब तक भाषा के लिये शुद्धता आवश्यक समझी जायेगी, तब तक बना रहेगा।"[9]

किसी भी रचनाकार के सृजन में उसकी सोच और उसकी शैली की झलक स्पष्टतः देखी जा सकती है। सन् 1903 ई. में द्विवेदी जी ने 'सरस्वती' नामक मासिक पत्रिका के संपादन का कार्यभार संभाला और सन् 1920 ई. तक वे सफलतापूर्वक इसका निवर्हन करते रहे। उनकी रचनात्मकता तथा उनकी नवचेतना के स्वर हमें इसमें भी मुखरित होते दिखाई-सुनाई देते हैं। 'सरस्वती' पत्रिका अपने युग का प्रतिनिधित्व करनेवाली एक अभूतपूर्व पत्रिका थी; जिसके माध्यम से द्विवेदी जी ने हिंदी की विलक्षण सेवा की। "सरस्वती की किसी एक वर्ष की या छमाही संख्या भी देख लेने पर उसके स्वरूप और उद्देश्यों का पूरा आभास मिल जाता है। किसी प्राचीन संस्कृत या हिंदी कवि की चर्चा और उसकी रचनाओं के उद्धरण, हिन्दी से भिन्न किसी भाषा के सामयिक कवि या लेखन का विवरण, इतिहास के किसी समुन्नत काल का उल्लेख और तत्कालीन किसी समृद्ध राजवंश का परिचय प्राचीन कला संपत्ति का चित्रों सहित प्रदर्शन, भारतवर्ष की सभ्यता और संस्कृति का सुंदर देशों पर प्रभाव, भारतीय या विदेशी किसी दार्शनिकवाद की रूपरेखा, नए विज्ञान की कोई खोज, कुछ नई समस्याएँ जिनका संबंध देश के हित या उन्नति से है, कुछ प्राकृतिक सौदर्य स्थलों और नई पुरानी यात्राओं का वर्णन कुछ राजनीतिक और आर्थिक प्रश्नों

और समस्याओं पर सरकार से अपील, हिन्दी के प्रसार के लिए कोई टिप्पणी कुछ पुस्तक समीक्षाएँ, सामयिक, गतिविधि पर प्रासंगिक दृष्टिपात, कुछ उत्थानमूलक किंतु साहित्यिक दृष्टि से साधारण कविताएँ और कुछ सरल सुंदर सुधारात्मक कहानियाँ, यही सन् 1 से 20 तक की सरस्वती की प्रमुख रूपरेखा या साज-सज्जा थी।''[10]

पत्रिका के संपादन के साथ ही उन्होंने सृजनकार्य भी किया। इनके काव्यसंग्रह हैं, काव्यमंजूषा, कविता-कलाप, सुमन, कुमारसंभव-सार, कान्यकुब्ज-अबला-विलाप, विहार-वाटिका, विनय-वाटिका, नागरी, ऋतुरंगिणी, स्नेहमाला । द्विवेदी जी ने शताधिक निबंध लिखे जो सरस्वती तथा अन्य पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाषित होते रहे। अनुवाद के क्षेत्र में भी इनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है; इन्होंने संस्कृत ग्रंथों, कालिदास-कृत मेघदूतम्, कुमारसंभवम्, रघुवंश, ऋतुसंहार; भारवि-कृत किरातार्जुनीयम्; भट्ट नारायण-कृत वेणी संहार, आदि, इनके अतिरिक्त द्विवेदी जी ने अंग्रेजी के प्रथम निबन्धकार बेकन के निबन्धों का बेकन-विचार-रत्नावली नाम से अनुवाद किया है। आलोचना के क्षेत्र में नाटकशास्त्र, हिन्दी नवरत्न, रसज्ञ रंजन, विचार-विमर्श कालिदास की निरंकुशता तथा साहित्य संदर्भ प्रमुख ग्रंथ हैं। "इस युग की समस्त साहित्य चेतना महावीर प्रसाद द्विवेदी में समाहित है। उन्होंने भाषा का संस्कार व परिष्कार किया। द्विवेदी जी ने खड़ी बोली के संस्कार के साथ-साथ भाषा में संस्कृतनिष्ठता का समर्थन किया।"[11] हिंदी गद्य साहित्य के क्षेत्र में ही नहीं पद्य के क्षेत्र में भी उनके योगदान को विस्मृत नहीं किया जा सकता। महावीर प्रसाद द्विवेदी ने लगभग पिच्चासी पुस्तकों की रचना की। "खड़ी बोली के पद्यविधान पर भी आपका पूरा-पूरा असर पड़ा। पहली बात तो यह हुई कि उनके कारण भाषा में बहुत कुछ सफाई आई । बहुत से कवियों की भाषा शिथिल और अव्यवस्थित होती थी, और बहुत से लोग ब्रज और अवधी आदि का मेल भी कर देते थे। 'सरस्वती' के संपादन काल में उनकी प्रेरणा से बहुत से नए लोग खड़ी बोली की कविता करने लगे। उनकी भेजी हुई कविताओं की भाषा आदि दुरुस्त करके वे 'सरस्वती' में दे दिया करते थे। इस प्रकार के लगातार संशोधन से धीरे-धीरे बहुत से कवियों की भाषा साफ हो गई, उन्हीं नमूनों पर और लोगों ने भी अपना सुधार किया।"[12]

द्विवेदी जी का लेखन 'बहुजन हिताय' हुआ करता था। वे शुद्ध और सरल भाषा लिखने के पक्षधर थे; जिससे अधिकांश जन समूह साहित्य पढ़कर उसे समझ सके और उससे लाभान्वित हो सके; अपने इसी सोच के आधार पर वे लेखों के विषय का चयन किया करते थे। उनकी अपनी भाषा भी उनके सोच को ही प्रतिबिम्बित करती है। "मैं तो सरल भाषा के लेखक को ही बहुत बड़ा लेखक समझता हूँ। लिखने का मतलब औरों पर अपने मनोभाव प्रकट करना है। जिसका मनोभाव जितने ही अधिक लोग समझ सकेंगे, उसका प्रयत्न और परिश्रम उतना ही अधिक सफल हुआ समझा जायेगा। जितने बड़े-बड़े लेखक हो गये है, प्रायः सभी सीधी सादी और बहुजन बोधगम्य भाषा के पक्ष पाती थे।"[13]

हिंदी भाषा-साहित्य के विकास तथा नवनिर्माण के लिये वे इतने समर्पित थे कि अपने विरोधियों की आलोचना भी उन्हें इस लक्ष्य से विचलित नहीं कर सकी। जब भी किसी नवोदित रचनाकार की रचना प्रकाशित होने के लिये उनके पास आती थी तो वे एक संपादक के दायित्त्व का निर्वहन करते हुए उसमें यथोचित संशोधन किया करते थे; संशोधित करते हुए कभी-कभी तो पूरी रचना ही बदल जाती थी; किन्तु फिर भी वे रचना को उसी रचनाकार के नाम से प्रकाशित

करते थे, वह जिसकी थी। ‘‘विचारों के क्षेत्र में नई और बहुमुखी सामग्री एकत्र करने का श्रेय आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी को है, जिन्होंने हिन्दी के लिए भाषा संबधी एक नया प्रतिमान भी प्रस्तुत किया है। नए विचार और नई भाषा नया शरीर और नई पोषाक दोनों ही नई हिंदी को द्विवेदी जी की देन है। इसी कारण वे नई हिन्दी के प्रथम और युग प्रवर्तक आचार्य माने जाते हैं। द्विवेदी जी और उनके साथियों का महत्त्व नये निर्माण के लिए प्रचुर और अनेकमुख सामग्री भेंट करने में है। साहित्य के क्षेत्र में किसी एक व्यक्ति पर इतना बड़ा उत्तरदायित्व इतिहास की शक्तियों ने कदाचित पहली बार रखा था और पहली ही बार द्विवेदी जी ने इस उत्तरदायित्त्व के सफल निर्वाह का अनुपम निदर्शन प्रस्तुत किया।”[14]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है, आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का सम्पूर्ण जीवन हिन्दी भाषा व उसके साहित्य को समर्पित था। वे सदैव हिंदी के पक्षधर रहे। वे हिन्दी की उपेक्षा करने वाले लोगों से कहा करते थे- “अँगरेज़ी ही नहीं आप अरबी, फ़ारसी, तुर्की, फ्रेंच, जर्मन, लैटिन, ग्रीक और हेब्रम आदि ज़िन्दा या मुर्दा, जितनी भाषाएँ चाहें सीखकर उसमें निबद्ध ज्ञानराशि का अर्जन कीजिये। जो लोग अपनी भाषा नहीं जानते उनसे, आवश्यकता पड़ने पर, उन्हीं की भाषा में बातचीत भी कीजिये और उन्हीं की भाषा में पत्र व्यवहार भी। अपनी योग्यता दिखाने या प्रभुता की धाक जमाने के लिये भी यदि आप रहा ही न जाए तो, क्षण भर, अँगरेज़ी या अन्य विदेशी भाषाओं में अपने मानसिक विचार प्रकट कीजिये। पर, परमेश्वर के लिये-अपने व अपने देश के हित के लिये-बोलचाल में, अपनी भाषा के पावन क्षेत्र में, वर्ण-सांकर्य का बीज मत बोइये और अपने आत्मीयों आदि के साथ अकारण ही, विदेशी भाषाओं में पत्र-व्यवहार मत कीजिये।”[15] अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी उन्हें इस बात का खेद रहा “अपनी मातृभाषा हिन्दी की उन्नति के लिये जो काम करने का संकल्प मैंने लिया था, वे सब मैं नहीं कर सका।”[16] अपने कर्तव्य एवं लक्ष्य के प्रति वे जितने जाग्रत थे, हिंदी भाषा और साहित्य को प्रतिष्ठत करने के लिये उतने ही कटिबद्ध भी। यदि आज हम अपनी व्यक्तिगत स्पार्थपरता से मुक्त होकर, हिंदी को अपने राष्ट्र की अस्मिता की पहचान स्वीकार करके, उसका सम्मान करना सीख जाए और हमारा हृदय भी हिंदी भाषा के प्रति उसी निष्ठा और समर्पण भाव से आपूरित हो जाए, जैसा आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी का था तो, निसंदेह एक दिन हमारी हिंदी राष्ट्रभाषा के पद पर सुशोभित होगी। अन्ततः कहा जा सकता है, “वास्तव में द्विवेदी जी के जीवन का प्रत्येक पहलू साहित्य सेवियों देशभक्तों और निष्काम सेवा करने वालों के लिए एक आदर्श है और रहेगा।”[17]

संदर्भ सूची :

1. वाजपेयी, आचार्य नंद दुलारे, आधुनिक साहित्य: सृजन और समीक्षा, स्वराज प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ0सं0-21
2. ‘पर्वतीय’ लीलाधर शर्मा, भारतीय चरित कोष, शिक्षा भारती, मदरसा रोड, कश्मीरी गेट दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009 पृ0सं0 617
3. बालबंधु, (संपादक) हिन्दी साहित्यिकों के पुण्य संस्मरण, हिन्दी साहित्य भंडार 55 चैपटियाँ रोड लखनऊ, प्रथम संस्करण 1986, पृ0सं0 53,
4. बालबंधु, (संपादक) हिन्दी साहित्यिकों के पुण्य संस्मरण, हिन्दी साहित्य भंडार 55 चैपटियाँ रोड लखनऊ, प्रथम संस्करण, 1986, पृ0सं0 51
5. वाजपेयी, आचार्य नंद दुलारे, आधुनिक साहित्य : सृजन और समीक्षा, स्वराज भारती प्रकाशन दिल्ली, प्रथम संस्करण 2009, पृ0सं0 21

6. बालबंधु, (संपादक) हिन्दी साहित्यिकों के पुण्य संस्मरण, हिन्दी साहित्य भण्डार 55 चैपटियाँ रोड, लखनऊ प्रथम संस्करण, 1986, पृ0सं0 53-54
7. बालबंधु संपादक हिन्दी साहित्यकों के पुण्य संस्मरण, हिन्दी साहित्य भण्डार 55 चैपटियाँ रोड, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1986, पृ0सं0 54
8. बालबंधु, (संपादक) हिन्दी साहित्यिकों के पुण्य संस्मरण, हिन्दी साहित्य भण्डार 55 चैपटियाँ रोड, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1986, पृ0सं0 55
9. शुक्ल आचार्य रामचंद्र हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद, चतुर्थ संस्करण 2014, पृ0 सं0 336
10. वाजपेयी, आचार्य नंद दुलारे, आधुनिक साहित्य सृजन और समीक्षा, स्वराज भारती प्रकाशन दिल्ली प्रथम संस्करण 2009, पृ0सं0 53-54
11. फुल्ल, सुशील कुमार, साहित्यिक निबंध, भावना प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2003, पृ0सं0 365
12. शुक्ल, आचार्य रामचन्द्र, हिन्दी साहित्य का इतिहास, लोकभारती प्रकाशन प्रथम संस्करण 2014, पृ0 सं0 416
13. प्रसाद कमला, आधुनिक हिंदी कविता और आलोचना की द्वन्द्वात्मकता, प्रकाशक साहित्य वाणी, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1986, पृ0 सं0 104
14. बालबंधु, (संपादक) हिन्दी साहित्यिकों के पुण्य संस्मरण, हिन्दी साहित्य भण्डार 55, चैपटियाँ रोड, लखनऊ, प्रथम संस्करण 1986, पृ0सं0 57
15. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद, हिन्दी भाषा, वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण-2003, पृ0सं0 130
16. द्विवेदी, आचार्य महावीर प्रसाद, हिन्दी भाषा, (मार्च 1913) वाणी प्रकाशन दरियागंज नई दिल्ली, संस्करण-2003, पृ0सं0 131
17. वाजपेयी, आचार्य नंद दुलारे, आधुनिक साहित्य: सृजन और समीक्षा, स्वराज भारती प्रकाशन, दिल्ली प्रथम संस्करण 2009 पृ0सं0 53